International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 11 Issue 03, March 2021
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

भक्ति आन्दोलन और गुरु जम्भेश्वर जी

डॉ. सुरेन्द्र कुमार बिश्नोई
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
दयानन्द महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

भारतीय इतिहास में मध्यकाल संक्रमण का काल था। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सब क्षेत्रों में एक उथल–पुथल सी मची हुई थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह समय भक्तिकाल का है जो कि 'स्वर्ण युग' माना जाता है। इस कालखण्ड (विक्रम संवत् 1375 से 1700 तक) में हिन्दी भाषा और साहित्य ने अनेकानेक कलात्मक ऊंचाइयों का स्पर्श किया था। यह साहित्य नवजागरण की भावना से ओत–प्रोत, भारतीय संस्कृति और समाज में जागरण का पहला व्यापक नवोन्मेष था। भक्ति आन्दोलन भक्ति, प्रेम, समन्वय, समरसता के महीन धागों से समाज को नये सिरे से रचता– गढ़ता है। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसमें पूरे साहस व निर्भीकता के साथ जड़ सामाजिक व्यवस्था, सामंतवाद, भोग–विलास, राज्य विस्तार की सनक आदि नकारात्मक प्रवृतियों पर गहरा कुठाराघात किया गया और मुक्त भाव से भक्ति, मानवता, सदाचार, संयम, परोपकार और संवेदनशीलता का विराट काव्यलोक रचा गया।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन अपने अखिल भारतीय स्वरूप में तत्कालीन समाज को न केवल दिशा देता है बल्कि उसके सच की गहन पड़ताल भी करता है। निराशा की बंजर भूमि को यह आंदोलन ज्ञान, भक्ति और कर्म की शिक्षा रूपी गंगा, यमुना, सरस्वती से सींचकर उर्वर भूमि में बदल देता है। इस आंदोलन के स्वरूप और प्रसार पर प्रकाश डालते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते हैं– **"ऐसा जबरदस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते हैं, सब एक–दूसरे को प्रेरणा देते हैं। एक दूसरे से प्रेरणा लेते हैं और मिलजुलकर भक्ति के ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवाहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि–कोटि साधारणजन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्मविश्वास, जिंदा रहने की, आत्मसम्मान के साथ जिंदा रहने की, एक शक्ति पाते हैं।"**[1]

अब प्रश्न यह उठता है कि इतने विशाल आंदोलन के उदय होने का प्रमुख कारण क्या है? इसकी पृष्ठभूमि क्या है? इसके प्रेरणास्रोत कौन–कौन से है? सर्वप्रथम जार्ज ग्रियर्सन की दृष्टि इस आंदोलन पर गई और उन्होंने इस पर टिप्पणियां करते हुए कई बातें कही– **"हम अपने को ऐसे धार्मिक आंदोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आंदोलनों से कहीं**

अधिक व्यापक और विशाल है, जिन्हें भारत वर्ष ने कभी देखा है। यहां तक बौद्ध धर्म के आंदोलनों से भी अधिक व्यापक और विशाल है क्योंकि उसका प्रभाव आज भी वर्तमान है।"[2] आगे लिखते हैं– **"बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहां से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चय नहीं कर सकता।"**[3] उनके इस मत से स्पष्ट है कि उन्हें भक्ति आन्दोलन के स्रोत बारे कोई अनुमान नहीं है। फिर भी पूर्वाग्रहवश ईसाई मत को इससे जोड़ते हुए लिखते हैं– **"ईस्वी सन् की दूसरी या तीसरी शताब्दी में नेस्टोरियन ईसाई मद्रास प्रेसीडेंसी के कुछ हिस्सों में आ बसे थे और रामानुजाचार्य को इन्हीं ईसाई भक्तों से भावावेश और प्रेमोल्लास के धर्म का संदेश मिला।"**[4] जार्ज ग्रियर्मन का यह मत ईसाई मत के रंग से रंगा हुआ पूर्णतः आधारहीन है, इसलिए आगे के विद्वानों ने इसका उत्तर देना भी आवश्यक नहीं समझा। भक्ति आंदोलन के उद्भव के कारणों और स्रोतों पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं– **"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराये जाते थे, देव मूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनां तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।"**[5] शुक्ल जी ने इस विषय में राजनीतिक के साथ–साथ धार्मिक कारणों की भी पड़ताल की है– **"वज्रयानी सिद्ध, कापालिक आदि देश के पूवी भागों में और नाथपंथी जोगी पश्चिमी भागों में रमते चले आ रहे थे। इसी बात से इसका अनुमान हो सकता है कि सामान्य जनता की धर्म भावना कितनी दबती जा रही थो.... कर्म और भक्ति ही सारे जन–समुदाय की संपत्ति होती है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में कर्म तो अर्धशून्य विधि विधान, तीर्थाटन और पर्व स्नान इत्यादि के संकुचित घेरे में पहले से बहुत कुछ बद्ध चला आता था। धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति, जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में हुआ था, कभी कहीं दबती, कभी कहीं उभरती, किसी प्रकार चली भर**

आ रहो थी।"[6] शुक्ल जी की दृढ़ मान्यता है कि मुस्लिम आक्रमण से हिन्दू जाती आत्मविश्वास से हीन हुई और इसे पुनः प्राप्त करने हेतु हिन्दू भक्ति के शरणागत हुए।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उपर्युक्त मत पर सबसे तीव्र प्रतिक्रिया आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने की। वे लिखते हैं– **"यह भी बताया गया है कि जब मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे तो निराश हिन्दू लोग भगवान का भजन करने लगे। यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है कि जब मुस्लिम लोग उत्तर भारत में मंदिर तोड़ रहे थे, तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।"**[7] इससे भी आगे बढ़कर द्विवेदी जी अपनी अन्य पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में लिखते हैं– **"दुर्भाग्यवश, हिन्दी साहित्य के अध्ययन और लोकचक्षु गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते हैं। एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की सम्पत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान पतन के साथ अंगागि भाव से सम्बन्ध है आर दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक निरन्तर पतनशील जाति की चिन्ताओं का मूर्त्त प्रतीक है जो अपने आप में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। मैं दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ और अगर ये बातें मान भी ली जाएं तो भी यह कहने का साहस करता हूँ कि फिर भी इस साहित्य का अध्ययन करना नितांत आवश्यक है क्योंकि दस सौ वर्षों तक दस करोड़ कुचले हुए मनुष्यों की बात भी मानवता की प्रगति के अनुसंधान के लिए केवल अनुपेक्षणीय ही नहीं, बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा करके इस्लाम के महत्त्व को भूल नहीं रहा हूँ लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है।"**[8]

द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय चिंतन व मनीषा का स्वाभाविक विकास मानते हैं, वहीं शुक्ल जी उसे मूलतः वैष्णव भक्ति की विकसित अभिव्यक्ति मानते हैं, जिसकी गति मुसलमानों के आगमन के बाद तीव्र हो जाती है। शुक्ल जी और द्विवेदी जी के मत में जो अंतर दिखाई देता है वह उनके बीच इतिहास दृष्टि के अन्तर को लेकर है। इसे स्पष्ट करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं– **"शुक्ल के लिए समाज अपने सभी वर्गों के साथ, जिस वे**

समष्टि रूप में जनता कहते हैं, साहित्यिक परिवर्तन और विकास के लिए जिम्मेदार हैं। द्विवेदी इसके लिए प्रमुख कारक 'लोक' को मानते हैं जो समाज का अपेक्षया पिछड़ा वर्ग है।... समाज के कारण रामचन्द्र शुक्ल के लिए इस्लाम उनके विवेचन में गुणात्मक महत्व रखता है जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक को केन्द्र में रखते हैं, जहां इस्लाम का प्रभाव और उसके लिए क्रिया प्रतिक्रिया उतना महत्त्व नहीं रखती, वह केन्द्र में नहीं हाशिए पर है, रुपये में बारह आना नहीं, चार आना हो तो हो।"[9] इस विषय में डॉ. बच्चन सिंह का मत भी उल्लेखनीय है– **"हिन्दी क विद्वान कभी शुक्ल जी के मत का समर्थन करते रहे तो कभी द्विवेदी जी के मत का। जरूरत यह है कि दोनों मतों से हटकर विचार किया जाए क्योंकि दोनों आधे–आधे सच हैं।"**[10] वे आगे लिखते हैं– **"शुक्ल जी के कथन को पूर्णतः मान लेने पर भक्तिकाल खंडित हो जाएगा। संत काव्य और सूफी काव्य उनके सैद्धान्तिक दायरे से बाहर हो जाएंगे। द्विवेदी जी का कथन भी अर्द्धसत्य ही है। यदि मुसलमान न आये होते तो न संत काव्य लिखा जाता, न सूफी काव्य। क्षितिमोहन सेन और इतिहासकार ताराचन्द ने स्पष्ट रूप से संत कवियों पर सूफियों का प्रभाव स्वीकार किया है।"**[11]

भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य एक व्यापक विषय है, जिस पर आलोचकों ने भी खूब कलम चलाई है। कहीं उनके विचारों में समानताएं हैं तो कहीं विषमताएं। कोई भी संश्लिष्ट सांस्कृतिक– साहित्यिक परिघटना एक कारण से प्रस्फुटित नहीं होती है, उसके कई कारण होते हैं और स्वाभाविक है कि उन कारणों का विवेचन भी कई कोणों, सूत्रों और पद्धतियों से ही संभव होता है। इस तथ्य पर सभी सहमत है कि भक्ति आंदोलन जन चेतना का आंदोलन है जो सामाजिक कुरीतियों, अमानवीय व्यवस्थाओं तथा सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करते हुए ज्ञान, भक्ति और कर्म का ऐसा विराट लोक रचता है जहां निरन्तर प्रेम, त्याग मानवता की वर्षा होती रहती है।

भक्ति आन्दोलन को गुरु जम्भेश्वर जी का अवदान :

भक्ति आन्दोलन किसी राजनीतिक आन्दोलन की भांति नियोजित भले ही नहीं था परन्तु इसका प्रभाव व उपस्थिति बहुत व्यापक थी। भारत का कोई भी कोना इसकी ब्यार से रहित नहीं था। जहां भी देखो इस गुदड़ी का कोई न कोई लाल किसी झोंपड़ी में या किसी टिल्ले

पर बैठा भगवान के नाम की अलख जगा रहा था। उसका यह सिंहनाद निराशा व कुण्ठा रूपी सियार को दहलाने का कार्य कर रहा था। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के इन पुरोधाओं की एक दीर्घ शृंखला निर्मित होती है। इस अमूल्य माला में गुरु जम्भेश्वर जी भी एक दैदीप्यमान रत्न है। गुरु जम्भेश्वर जी का व्यक्तित्व व वाणी अपनी विलक्षणता के कारण सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

कबीर के 53 वर्ष बाद सम्वत् 1508 भादो वदी अष्टमी को गुरु जम्भेश्वर जी का आविर्भाव इस धरा धाम पर होता है। उनके अवतार समय की पुष्टि उनके परवर्ती कवियों के अनेक कथनों में होती है–

सम्वत् पन्द्रह सौ इठोत्तर कृतका नक्षत्र प्रमाण।
भादो वदि अरू अष्टमी चन्द्रवार पुनि जाण।।[12]
पनरासर अठोतरि इला, कायम ले परगटीयो कला।
वदि भादव आठैण्य अवतार, करि कीरया आयो अवतार।।[13]

यह भी सुज्ञात ही है कि जम्भेश्वर जी का आविर्भाव वर्तमान राजस्थान के नागौर जिले के पीपासर गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम लोहट जी पंवार व माता का नाम हांसा देवी था। वे आजीवन अविवाहित ही रहे। गुरु जम्भेश्वर जी का कार्यक्षेत्र वह मरूप्रदेश था जिसकी भौगोलिक विषमता की ओर संकेत करते हुए स्वयं कबीर ने कहा है–

बगड़ देश लूवन का घर है, तहं जिनि जाई दाझन का डर है,
सब जग देखौं कोई न धीरा, परत धूरि सिर कहत अबीरा।।

गुरु जम्भेश्वर जी का सबसे महनीय कार्य 'बिश्नोई पंथ' की स्थापना का था। उन्होंने विक्रम सम्वत् 1542 में कार्तिक वदी अष्टमी को संभराथल धोरे (वर्तमान बीकानेर जिले में स्थित) पर 'बिश्नोई पंथ' की स्थापना की। गुरु जम्भेश्वर जी ने 'बिश्नोई पंथ' में बिना किसी जाति धर्म के भेदभाव के इच्छुकजनों को इस पंथ में दीक्षित किया था। उन्होंने 29 धर्म नियमों की एक आचार संहिता इस पंथ के लिए निर्धारित की थी, जो इस प्रकार है–

1. तीस दिन सूतक रखना।
2. पांच दिन ऋतुवन्ती स्त्री का गृहकार्य से पृथक् रहना।
3. प्रतिदिन सवेरे स्नान करना।
4. शील का पालन करना व संतोष रखना।
5. बाह्य और आन्तरिक पवित्रता रखना।
6. द्विकाल संध्या–उपासना करना।

7. संध्या समय आरती और हरिगुण गाना।
8. निष्ठा और प्रेमपूर्वक हवन करना।
9. पानी, ईंधन और दूध को छान कर प्रयोग में लेना।
10. वाणी विचार कर बोलना।
11. क्षमा–दया धारण करना।
12. चोरी नहीं करनी।
13. निन्दा नहीं करनी।
14. झूठ नहीं बोलना।
15. वाद–विवाद का त्याग करना।
16. अमावस्या का व्रत रखना।
17. विष्णु का भजन करना।
18. जीव दया पालणी।
19. हरा वृक्ष नहीं काटना।
20. काम, क्रोध आदि अजरों को वश में करना।
21. रसोई अपने हाथ से बनानी।
22. थाट अमर रखना।
23. बैल बधिया नहीं कराना।
24. अमल नहीं खाना।
25. तम्बाकू का सेवन नहीं करना।
26. भांग नहीं पीना।
27. मद्यपान नहीं करना।
28. मांस नहीं खाना।
29. नीला वस्त्र व नील का त्याग करना।

गुरु जम्भेश्वर जी अनेक अर्थों में समूचे भक्ति आन्दोलन की आत्मा थे। भक्ति आंदोलन की विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय उनके यहां मिलता है। एक विचारक, वाणीकार, समाज सुधारक व दार्शनिक आदि विभिन्न रूपों का दर्शन उनके व्यक्तित्व में एक साथ होता है। भक्ति आन्दोलन को उनके बहुमुखी योगदान को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है :–

साहित्यिक अवदान :

भक्तिकाल के वाणीकारों का उद्देश्य काव्य की रचना करके अमर होना नहीं था। काव्य उनके लिए अपना संदेश जनसामान्य में सरसता से प्रसारित करने का माध्यम मात्र था। यह तथ्य गुरु जम्भेश्वर जी पर सटीक बैठता है। उनकी वाणी सायास काव्य न होते हुए भी आन्तरिक लय से युक्त सरस अभिव्यक्ति है। गुरु जम्भेश्वर जी की वाणी भक्तिकाव्य की न केवल अमर थाती है अपितु उसकी सम्पूर्ण प्रवृतियों की वाहक भी है। उनकी वाणी में 120 सबद है जिनका सामूहिक नाम 'सबदवाणी' व 'जम्भवाणी' है। इस वाणी की गंभीरता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उनके परवर्ती कवियों ने इसे पांचवां वेद माना है–

केवल न्यांन सारां सिरै, सब्र जौंण जाण सकल।
पांचवो न्यांन न उपजै, सकलां सीरि सोई अकल।।[14]
गुरु पांचमां वेद पढ़ै मुख परगट, सो गुरवाणी सांभलियो।।[15]

'सबदवाणी' की सैकड़ों प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। इसका अनेक बार सम्पादन व टीका का कार्य भी हुआ है, जिससे भक्ति साहित्य में समृद्धि हुई है। इनकी वाणी के अतिरिक्त गुरु जम्भेश्वर जी के अनुयायी कवियों ने विपुल मात्रा में भक्ति काव्य की सृजना की है। ऐसे कवियों की एक पूरी श्रृंखला है जिन्हें 'जाम्भाणी कवि' कहा जाता है। यह जाम्भाणी काव्यधारा न केवल भक्ति काल में प्रबल थी अपितु गत पांच शताब्दियों से अजस्र प्रवाहमान है।

सामाजिक अवदान :

भक्ति आन्दोलन वस्तुतः कोई काव्यांदोलन न होकर एक समाज सुधार का आन्दोलन है। इस आन्दोलन के सभी पुरोधाओं का एकमात्र उद्देश्य सामाजिक विषमताओं को जड़–मूल से उखाड़ना था। उनके इस मूल उद्देश्य की पूर्ति में उनकी काव्यमय वाणी तो साधन मात्र है। गुरु जम्भेश्वर जी ने भी अपनी वाणी व धर्म–नियमों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों व बुराइयों पर नकेल कसने का कार्य किया था। बिना किसी भेदभाव के सभी को अपने पंथ में शामिल करके उन्होंने समतामूलक समाज की स्थापना का स्वप्न साकार किया था। एक ओर उन्होंने जहां नशे व मांसाहार का निषेध किया, वहीं दूसरी ओर चोरी, चुगली, निंदा जैसी विघटनकारी प्रवृतियों को छोड़ने का आहवान भी किया है। **"जाम्भोजी के समाज दर्शन का चित्रपट (कैनवस) अत्यन्त विस्तृत है। गुरु जी ने लोकभाषा, लोक–प्रतीक, लोक प्रचलन तथा लोकाचार के माध्यम से समाज को अभिनव संस्कार, संदेश व संहिता प्रदान की।"**[16] एक आदर्श समाज की स्थापना ही गुरु जम्भेश्वर जी का लक्ष्य था, जिसकी प्राप्ति के लिए वे आजीवन प्रयासरत रहे।

सांस्कृतिक अवदान :

अनेक विचारकों ने भक्ति आन्दोलन को मूलतः एक सांस्कृतिक आन्दोलन माना है। यह आन्दोलन व्यक्ति, समाज व साहित्य को परिष्कृत करने का उपक्रम है। मध्यकाल में सबसे बड़ा आघात भारती संस्कृति को पहुंचा था। विदेशी आक्रान्ताओं ने अपनी संस्कृति की स्थापना हेतु प्रयास किया था। मध्यकालीन महापुरुष यह जानते थे कि भारतीयता को जीवित रखना है तो अपनी सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करनी होगी। गुरु जम्भेश्वर जी की वाणी एवं धर्म–नियम भारतीय संस्कृति का आख्यान है। अहिंसा, परोपकार, त्याग, दान, सत्य, क्षमा, दया जैसे तत्त्व जो भारतीय संस्कृति के प्राण हैं, उनकी पुरजोर वकालत गुरु जम्भेश्वर जी ने की है। इस विषयक कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है।

अहिंसा – **चर फिर आवै सहज दुहावै, जिसका खीर हलाली।**
जिसके गले करद क्यूं सारो। ये पढ़ सुण रहिया खाली।।[17]
भाई नाऊं बलद पियारो, ताकै गले करड़ क्यूं मारो।
जीवां ऊपर जोर करीजै, अंतकाल होयसी भारूं।।[18]

परोपकार– **'संसार में उपगार ऐसा ज्यूं घण बरसंता नीरूं।'**[19]

दान– **थोड़े मांहि थोड़े रो दीजै। होते नाह न कीजै।**
जोय–जांय नाम विष्णु के बीजै। अनन्त गुणा लिख लीजै।।[20]

"गुरु जाम्भोजी की सांस्कृतिक चेतना अत्यन्त ही प्रबल है। उन्होंने तत्कालीन संक्रमण काल में भारतीय संस्कृति की एक प्रहरी की भांति रक्षा की थी। उन्होंने भारतीय संस्कृति के प्राचीन श्रेष्ठ आस्थाजन्य मूल्यों को स्थापित करते हुए तत्कालीन समाज की जड़ता को दूर कर, परम्परागत मूल्यों, आदर्शों का युगीन आस्थाओं के साथ सुन्दर समन्वय किया था।"[21]

पर्यावरण चेतना :

मध्यकाल में पर्यावरण की कोई समस्या नहीं थी परन्तु दूरदर्शी गुरु जम्भेश्वर जी ने यह भांप लिया था कि दुनिया ऐसे ही चलती रही तो एक दिन पर्यावरण का संकट अवश्य उत्पन्न होगा। इसलिए उन्होंने अपने नियमों एवं वाणी में इस विषय पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। हरे वृक्ष को न काटना, जीवों पर दया करना, प्रतिदिन यज्ञ करना जैसे नियम उन्होंने इसी समस्या को ध्यान में रखकर बताए हैं। अपनी वाणी में भी उन्होंने उद्घोष किया है–

साम अमावस आदितवारी कांय काटो वनरायो।[22]

गुरु जम्भेश्वर जी के अनुयायियों ने उनकी इन्हीं शिक्षाओं से प्रभावित होकर अनेक बार पर्यावरण संरक्षण हेतु हरे वृक्षों व वन्य जीवों को बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है। बिश्नोई समाज में ऐसे बलिदानों की पूरी श्रृंखला विद्यमान है।[23] सन् 1730 में तो जोधपुर के पास खेजड़ली गांव में हरे वृक्षों को बचाने हेतु 363 बिश्नोई नर–नारियों ने प्राणों की आहुति दी थी, जो कि विश्व की अनूठी घटना है।[24]

गुरु जम्भेश्वर जी का पर्यावरण सम्बन्धी चिंतन समूचे भक्ति आन्दोलन में विलक्षण है और यह भक्ति आन्दोलन को एक नया आयाम भी प्रदान करता है।

सारतः कहा जा सकता है कि भक्ति आन्दोलन भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। इसके उदय के कारण व प्रेरणा के स्रोत चाहे कुछ भी हो परन्तु इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि इस आन्दोलन ने भारतीय जनमानस पर बहुत परोपकार किया था। यह एक प्रकार से निराशा से आशा की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर वाली यात्रा जैसा था। गुरु जम्भेश्वर जी ने इस आन्दोलन को प्रबल बनाने में बहुत बड़ा योगदान दिया था। उन्होंने इस आन्दोलन की तत्कालीन आवश्यकता व मर्म को पूर्णतः समझकर अपनी वाणी से इसे धार प्रदान की थी। गुरु जम्भेश्वर जी की महता व अवदान पर डॉ. हीरालाल माहेश्वरी द्वारा की गई टिप्पणी, केवल उन पर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भक्ति काव्य पर लागू होती है–

"पशुता के विरुद्ध मानवता का संघर्ष सनातन संघर्ष है। जाम्भोजी ने निषेधात्मक और पशु प्रवृतियों पर प्रहार करते हुए एक सुदृढ़ नैतिक धरातल पदान किया। उन्होंने भावनाओं का उदातीकरण किया, मत की दुर्बलताओं पर विजय पाने का मंत्र सिखाया तथा उच्च आदर्शों और मानव मूल्यों की स्थापना की। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की संस्थिति के लिए नैतिकता, उदात्त भावना और मूल्य तथा आदर्श आवश्यक है। इनके बिना न समाज चल सकता है, न राष्ट्र। इनसे हीन व्यक्ति और समाज की सत्ता आधार रहित है। अतः 'सबदवाणी' का मूल संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक और उपादेय है जितना वह जाम्भोजी के युग में था।"[25]

सन्दर्भ :

1. शिवकुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, पृ. 40
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृ. 68
3. वही, पृ. 70
4. वही, पृ. 71
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 61

6. वही, पृ. 62
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 78
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 111
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 92
10. डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 136
11. वही, पृ. 137
12. (संपा.) स्वामी आत्मप्रकाश जिज्ञासु, सुरजन जी कृत 'कथा औतार', पृ. 3/13
13. केसो जी कृत 'कथा विगतावली', हस्तलिखित
14. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, पृ. 583
15. वही, पृ. 421
16. (संपा.) डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी का जीवन दर्शन, पृ. 109
17. (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, सबदवाणी, पृ. 35–36
18. वही, पृ. 37–38
19. वही, पृ. 94
20. वही, पृ. 40
21. (संपा.) डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी का जीवन दर्शन, पृ. 269
22. (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, सबदवाणी, पृ. 42
23. डॉ. बनवारी लाल सहू, बिश्नोई पंथ और साहित्य, पृ. 36
24. डॉ. बनवारी लाल सहू, प्रकृति संरक्षण और खेजड़ली बलिदान
25. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी, पृ. 63